पारस परस

वर्ष-10 अंक-3 जुलाई-सितम्बर, 2020 रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

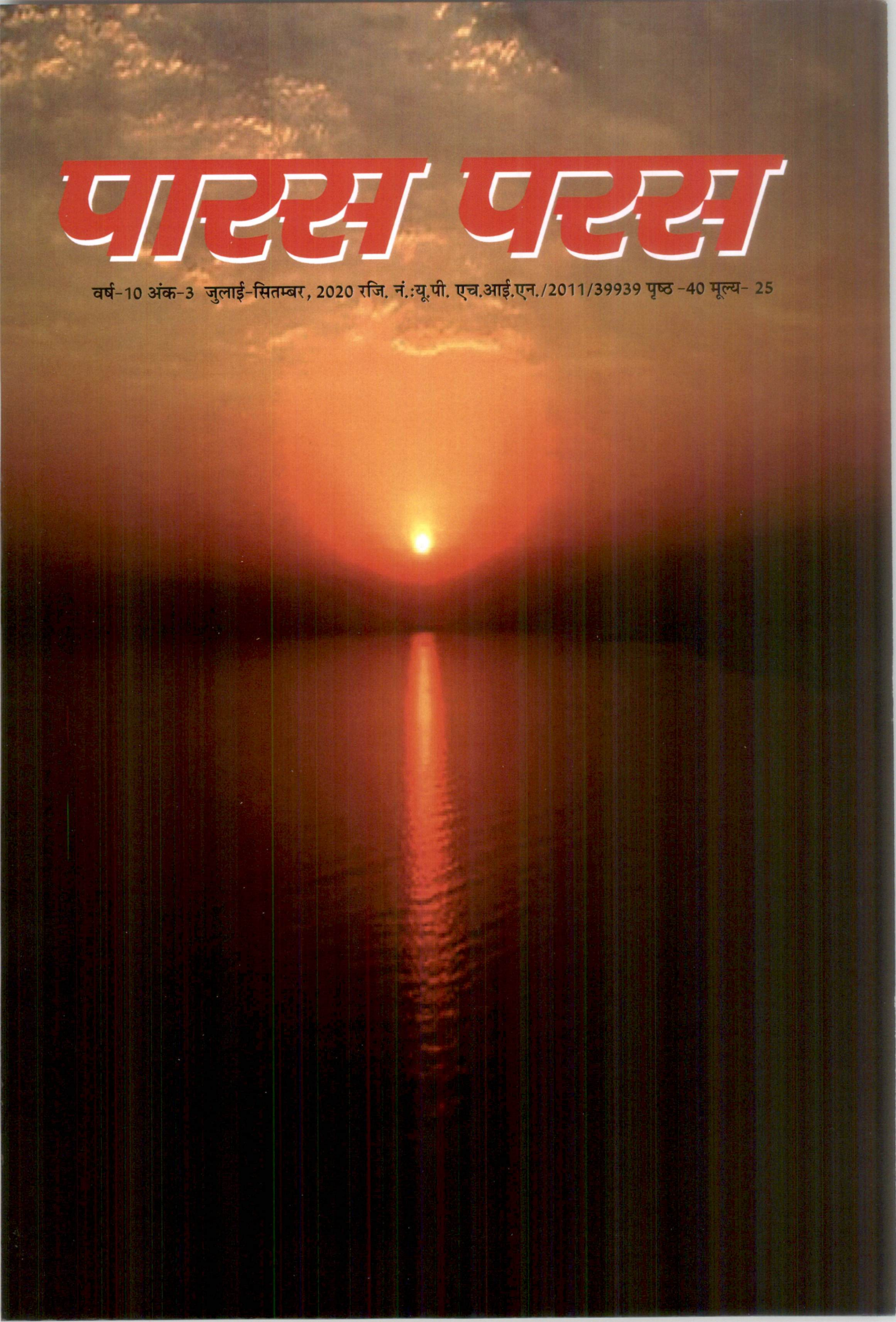

सृजन स्मरण

मैथिली शरण गुप्त

जन्म- 03 अगस्त 1885 निधन- 12 दिसम्बर 1965

मृषा मृत्यु का भय है,
जीवन की ही जय है।
जीव की जड़ जमा रहा है,
नित नव वैभव कमा रहा है,
यह आत्मा अक्षय है।
जीवन की ही जय है।
नया जन्म ही जग पाता है,
मरण मूढ़–सा रह जाता है,
एक बीज सौ उपजाता है,
सृष्टा बड़ा सदय है।
जीवन की ही जय है।

वर्ष : 10 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर, 2020 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिंटर्स
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
कवलित काल नहीं कर सकता	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
पुण्य स्मरण		5
कालजयी		
ग्राम-युवति	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	6
गंगा-वर्णन	भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र	7
भजो भारत को तन-मन से	मैथिलीशरण गुप्त	8
अंधेरे का मुसाफिर	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	9
समय के सारथी		
दुख दिया तो शक्ति भी दे दो सहन की विनोद	चन्द्र पाण्डेय	10
हर सपना साकार हो गया	नरेन्द्र श्रीवास्तव	11
मनुष्यता का दुःख	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	12
सावन चहुँ और सघन नाचे	हंस कुमार तिवारी	13
और नहीं,बस और नहीं,गम के प्याले और नहीं	संतोषानन्द	14
पेट का सवाल	शैल चतुर्वेदी	15
कलरव		
जोकर	प्रकाश मनु	16
पापा	प्रभुदयाल श्रीवास्तव	17
चिड़िया का घर	हरिवंश राय बच्चन	18
चंदा मामा	निधि अग्रवाल	19
नारी स्वर		
माँ	भारती	20
जीत के पल	भावना तिवारी	21
अदृश्य	मंजूषा	22
आत्मसंवाद	राखी सिंह	23
वक्त	लता सिन्हा 'ज्योतिर्मय'	24
ओस भरी दूब पर	शांति सुमन	25
भावों की कीमत	साधना जोशी	26
डर	स्मिता झा	27
तुम तो आकाश हो	सरोज सिंह	28
विजेता	सरिता तिवारी	29
उद्बोधन		
न तेरा है न तेरा है ये हिन्दुस्तान सबका है	उदयप्रताप सिंह	30
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं	शकील बदायूनी	31
नवोदित रचनाकार		
जिन्दगी समेटते हुए	अंचित	32
झुके फाइलों पर	किशन सरोज	33
प्रेम हमारा	विजयशंकर चतुर्वेदी	34
दया	विमल कुमार	35
काशी की गलियाँ	सुधांशु उपाध्याय	36
दीप पर्व इस बार मनायें	सुनील त्रिपाठी	37
यह घड़ी	सत्येन्द्र श्रीवास्तव	38
पिता	हेमन्त जोशी	39
परिवर्तन आने वाला है	हिमांशु पाण्डेय	40

महत्वाकांक्षा का लोभ में परिवर्तित होना घातक है

सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति महत्वाकांक्षी होता है और इस कारण वह बहुत सी ऐसी चीजों को भी प्राप्त करना चाहता है जो उसकी सामान्य पहुँच में नहीं होती हैं। महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए व्यक्ति कभी–कभी निष्ठुर भी हो जाता है। कदाचित् ऐसा होना आवश्यक भी है क्योंकि किसी प्रकार की शिथिलता, लापरवाही तथा भटकाव कहीं न कहीं इसकी पूर्ति में बाधा बनते हैं। इसलिए जैसे मत्स्यवेध यज्ञ में अर्जुन को केवल मछली की आँख के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था उसी तरह महत्वाकांक्षी व्यक्ति को अपने लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देना चाहिए तभी वह इसे प्राप्त करने में सफल हो सकता है। ध्यातव्य है कि महत्वाकांक्षा तथा लोभ के मध्य अन्तर है। हालाँकि यह अन्तर इतना बारीक है कि इसे समझने में प्रायः भ्रम हो जाता है। महत्वाकांक्षी व्यक्ति जब तक साधन और साध्य की पवित्रता में विश्वास रखता है तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु निष्ठुर हो जाने के बावजूद अमर्यादित, असंवेदनशील तथा अमानवीय नहीं होता, तब तक उसकी महत्वाकांक्षा उचित होती है किन्तु जब ऐसा व्यक्ति साधन व साध्य की पवित्रता के प्रति आस्थावान् नहीं रहता और अपने अनैतिक आचरण के माध्यम से लक्ष्य की प्राप्ति करना चाहता है तो वह लोभी बन जाता है और लोभी व्यक्ति यद्यपि तात्कालिक रूप से समय विशेष के लिए अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता हुआ दिखाई पड़ता है किन्तु कुछ काल के बाद उसका पतन हो जाता है।

इसी सन्दर्भ में बचपन में सुनी एक कहानी का स्मरण हो रहा है जो इस प्रकार थी :– एक व्यक्ति ने ईश्वर की आराधना की और उसकी आराधना से प्रसन्न होकर ईश्वर ने उससे उसकी इच्छा पूछी तो उस व्यक्ति ने कहा, 'प्रभु! मुझे एक विशाल भू–भाग का स्वामित्व प्राप्त हो जाय।' ईश्वर ने प्रसन्न होकर उसकी बात मान ली और कहा, 'तुम जिस स्थान पर खड़े हो वहाँ से जितनी दूरी तक परिक्रमा करने के बाद यहाँ वापस आ जाओगे वह भूमि तुम्हारे स्वामित्व में आ जाएगी किन्तु यह शर्त है कि तुम्हें सूर्यास्त तक इस स्थान पर वापस लौटना होगा तथा तुम केवल पैदल ही चलोगे, न तो दौड़ोगे और न ही किसी साधन का आश्रय लोगे।' उस व्यक्ति ने कहा, 'प्रभु! आज तो देर हो गई है, मुझे इस कार्य को प्रारम्भ करने की अनुमति कल प्रातःकाल से दे दें।' ईश्वर ने तथास्तु कहते हुए उसे दूसरे दिन सूर्योदय के समय से परिक्रमा शुरू करने और सूर्यास्त होने तक वापस आ जाने के लिए कहा। उस व्यक्ति ने दूसरे दिन सूर्योदय होते ही उस स्थान से परिक्रमा प्रारम्भ कर दी और काफी तेजी से लम्बे–लम्बे डग भरते हुए आगे बढ़ता चला गया। धीरे–धीरे दोपहर हो गयी उसे यह लगा कि अब वापस लौटना चाहिए जिससे सूर्यास्त तक वह अपने उद्गम स्थल पर पहुँच जाए किन्तु उसके मन का लोभ उसे यह प्रेरित करने लगा कि यदि थोड़ा दूर और चलें तो उसे और भी विस्तृत भू–भाग प्राप्त हो जाएगा। उसके मन का अन्तर्द्वन्द्व उसे कभी लौटने के लिए और कभी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहा किन्तु अन्ततः वह लोभ की भावना से प्रेरित हो गया कि उसे थोड़ा और दूर तक चलना चाहिए। यदि लौटते समय देर होगी तो दौड़कर अथवा

किसी साधन का आश्रय लेकर सूर्यास्त के पहले आरम्भिक स्थल पर पहुँच जाएगा। उसका दौड़ना या किसी साधन का आश्रय लेना ईश्वर तो देख नहीं रहा होगा। धीरे–धीरे समय बीतता गया और सूर्यास्त होने में कुछ ही समय बचा तब वह व्यक्ति वापस लौटने लगा। उसने सूर्यास्त निकट देखकर दौड़ने का प्रयास किया किन्तु उसके शरीर में इतनी ऊर्जा नहीं बची थी कि वह आरम्भिक स्थल तक दौड़ पाता। उसका शरीर शिथिल होने लगा और वह थक कर बीच रास्ते में ही गिर गया। थोड़ी ही देर में सूर्यास्त हो गया। ईश्वर वहीं प्रकट हो गए उन्हें देखकर वह लज्जित व्यक्ति दुःखी मन से बोला, 'प्रभु मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई। मैंने अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया और न ही मुझे किसी प्रकार की मर्यादा का ध्यान रहा, बल्कि अपनी क्षमता, सामर्थ्य से बाहर जाकर अत्यन्त विस्तृत भू–भाग प्राप्त करने के लोभ में जो प्राप्त कर सकता था उसे भी नहीं पा सका।' ईश्वर ने कहा, 'तुम्हारी महत्वाकांक्षा की भावना तो ठीक थी किन्तु तुम अपने अन्दर के लोभ का संवरण नहीं कर सके। महत्वाकांक्षा का होना बुरा नहीं है किन्तु उसका क्रियान्वयन किस रूप में और कितना हो सकता है इसका ध्यान अवश्य रहना चाहिए।'

निश्चित रूप से हमें अपनी क्षमता व संसाधन के अनुसार ही अपने लक्ष्यों का निर्धारण कर उस पर चलने का प्रयास करना चाहिए। लक्ष्यों की पूर्ति किस रूप में, कितनी व किस प्रकार हो सकती है, यह बहुत महत्वपूर्ण है। महत्वाकांक्षी होना अच्छा है क्योंकि जो सपने देखता है, उन्हीं के सपने पूरे भी होते हैं। लेकिन उन सपनों को पूरा करने के लिए सही दृष्टिकोण, वास्तविक क्षमता, उन्हें प्राप्त करने के लिए उपलब्ध संसाधन तथा क्रियान्वयन किए जाने की संभावनाओं का सही आकलन महत्वपूर्ण है। इन सब बातों का ध्यान रखने वाले व्यक्ति की ही महत्वाकांक्षा पूर्ण हो पाती है अन्यथा महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति होने में आने वाली किसी बाधा एवं विलम्ब की स्थिति में यह पथ भ्रष्ट कर देती है क्योंकि इसके लोभ में परिवर्तित हो जाने के कारण व्यक्ति लक्ष्य को किसी भी दशा में प्राप्त करना चाहता है हालाँकि फिर भी उसे प्राप्त नहीं कर पाता और उसकी वही दशा होती है जैसी दशा उस विस्तृत भू–भाग की चाह रखने वाले व्यक्ति की हुई।

यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के रचनाकारों, उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में भी आप सभी का सहयोग यथावत् मिलता रहेगा।

शुभ कामनाओं के साथ

डा0 अनिल कुमार

कवलित काल नहीं कर सकता

- डॉ. अनिल कुमार पाठक

माँ ने प्रमुदित हो जना जिसे,
कुल दीपक घर में आया।
पाकर विछोह निज मातु–पिता का,
वह किसलय कुम्हलाया।।

संघर्षों में पला–बढ़ा वह,
तनिक नहीं घबराया।
श्रेयस्कर कर्तव्य मात्र है,
कभी नहीं भरमाया।।

मातु–पिता की अदृश कृपा–
की, पाकर शीतल छाया।
बना स्वावलम्बी बचपन में,
सत्पथ को अपनाया।।

मिला कंध–से– कंध चला वह,
सबको ही अपनाया।
पिछड़े–बिछुड़े और अकिंचन,
सबको गले लगाया।।

दृढ़ प्रतिज्ञ औ' ललक प्रगति की,
जो चाहा सो पाया।
कुछ भी नहीं असंभव जग में,
करके यह दिखलाया।।

कवलित काल नहीं कर सकता,
यश जो तूने पाया।
कालजयी, युगपुरुष कृपा
कर, नेह–प्रीति की छाया।।

❖❖❖

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी की जयन्ती पर विनम्र श्रद्धांजलि

❖❖❖

ग्राम-युवति

- पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

वह आती,
अपने बिखरे केशों से,
यौवन–राशि लुटाती,
पथ पर मुसकाती, वह आती।

कर खेल समीरन मन्द हास,
बिखराता उसके केश–पास,
मुख पर घूँघट–देता डाल,
लज्जा से हो उठती लाल,
फटे आँचल को खिसकाती, वह आती।

टेढ़े पथ पर टेढ़ी चाल,
लज्जित होता है देख व्याल,
मुख चूम लिया करता सौरभ,
सिहर उठती वह तत्काल,
तनिक लज्जा से मुड़ जाती है, वह आती।

उस ओर क्षितिज के आगे,
कुछ महल बने वैभवशाली।
रहतीं उसमें कितनी ही बालायें,
पहने नीली, पीली साड़ी।
पर दोनों में अन्तर कितना,
नहीं चन्द्र–तारक में जितना,
यह जीवन को सुस्मित करती,

❖❖❖

गंगा-वर्णन

– भारतेंदु हरिश्चंद्र

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच–बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति।।

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इम आवत।
जिमि नर–गन मन बिबिध मनोरथ करत, मिटावत।।

सुभग स्वर्ग–सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत।।

श्रीहरि–पद–नख–चंद्रकांत–मनि–द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भव खण्डन सुर सरबस।।

शिवसिर–मालति–माल, भगीरथ नृपति–पुण्य–फल।
एरावत–गत, गिरिपति–हिम–नग–कण्ठहार कल।।

सगर–सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन।।

❖❖❖

भजो भारत को तन-मन से

– मैथिलीशरण गुप्त

भजो भारत को तन–मन से।
बनो जड़ हाय! न चेतन से।।

करते हो, किस इष्ट देव का, आँख मूँद कर ध्यान?
तीस कोटि लोगों में देखो तीस कोटि भगवान।
मुक्ति होगी इस साधन से।
भजो भारत को तन–मन से।।

जिसके लिए सदैव ईश ने लिये आप अवतार,
ईश–भक्त क्या हो यदि उसका करो न तुम उपकार।
पूछ लो किसी सुधी जन से।
भजो भारत को तन–मन से।।

पद–पद पर जो तीर्थ भूमि है, देती है, जो अन्न,
जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो, करो, उसे सम्पन्न।
नहीं तो क्या होगा धन से?
भजो भारत को तन–मन से।।

हो जावे अज्ञान–तिमिर का एक बार ही नाश,
और यहाँ घर–घर में फिर से फैले वही प्रकाश।
जियें सब नूतन जीवन से।
भजो भारत को तन–मन से।।

❖❖❖

अँधेरे का मुसाफिर

– सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

यह सिमटती साँझ,
यह वीरान जंगल का सिरा,
यह बिखरती रात, यह चारों तरफ सहमी धरा,
उस पहाड़ी पर पहुँचकर रोशनी पथरा गयी,
आखिरी आवाज पंखों की किसी के आ गयी,
रुक गयी अब तो अचानक लहर की अँगड़ाइयाँ,
ताल के खामोश जल पर सो गई परछाइयाँ।

दूर पेड़ों की कतारें एक ही में मिल गयीं,
एक धब्बा रह गया, जैसे जमीनें हिल गयीं,
आसमां तक टूटकर जैसे धरा पर गिर गया,
बस धुँए के बादलों से सामने पथ घिर गया,
यह अँधेरे की पिटारी, रास्ता यह साँप–सा,
खोलनेवाला अनाड़ी मन रहा है, काँप–सा।

लड़खड़ाने लग गया मैं, डगमगाने लग गया,
देहरी का दीप तेरा याद आने लग गया,
थाम ले कोई किरन की बाँह मुझको थाम ले,
नाम ले कोई कहीं से रोशनी का नाम ले,
कोई कह दे, दूर देखो टिमटिमाया दीप एक,
ओ! अँधेरे के मुसाफिर उसके आगे घुटने टेक।

❖❖❖

दुख दिया तो शक्ति भी दे, दो सहन की

- विनोद चन्द्र पाण्डेय

दुख दिया तो शक्ति भी दे, दो सहन की।

वेदना देकर स्वयं औषधि बताओ,
तिमिर दो तो राह भी उज्ज्वल दिखाओ।
दृष्टि रक्खो तुम निरन्तर सन्तुलन की,
दुख दिया तो शक्ति भी दे दो सहन की।

शूल ही मत दो मुझे, मृदु फूल भी दो,
दो अगर मंझधार तो प्रिय कूल भी दो।
ज्योत्स्ना दो विरह–ज्वाला के शमन की,
दुख दिया तो शक्ति भी दे, दो सहन की।।

भार अम्बर का अवनि ने नित्य झेला,
भू अकेली, क्षितिज सूना, नभ अकेला।
किन्तु सीमा भी कहीं होती वहन की,
दुख दिया तो शक्ति भी दे, दो सहन की।

टूटकर जुड़ना कठिन है, लोक–पथ पर,
बिछुड़कर मिलना यहाँ सम्भव न सत्वर।
क्षीण होने दो नहीं आशा मिलन की,
दुख दिया तो शक्ति भी दे दो सहन की।

विमुख हो तो ध्यान रक्खो भावना का,
मत करो अपमान स्नेहिल साधना का।
विधि सुझा दो तुम मुझे अर्चन–नमन की,
दुख दिया तो शक्ति भी दे, दो सहन की।

❖❖❖

हर सपना साकार हो गया

– नरेन्द्र श्रीवास्तव

जब से मुझसे प्यार हो गया, हर सपना साकार हो गया।

पूनम जैसा रंग सखी री, सुफला रूप पवित्र सखी री,
हृदय–पटल पर अंकित करके, आज स्वयं छविकार हो गया।

कंचन–मृग–सा गात, चंदन सुरभित प्यारा–प्यारा,
रूप–कलश स्वाती बन छलका, आकर्षण अभिसार हो गया।

ज्योति पुंज सम नयन–उघाड़े, सुधा प्रस्फुटित वचन–उचारे,
हृदय और मस्तिष्क मिल गये, नवजीवन संचार हो गया।

चरण सुकोमल पावन–पावन, मुख शोभित, सुन्दर, मनभावन,
आज मनोहर छवि अपनाकर, मन–आँगन उजियार हो गया।

शब्द मिलन के गीत बन गये, जीवन का संगीत बन गये,
फैला शुभ्रालोक हृदय में, छूमंतर अंधकार हो गया।

फूल उठी मन फुलवारी, सुरभित मन की क्यारी–क्यारी,
सुधा–दृष्टि तेरी पाकर प्रिय, जीवन का उद्धार हो गया।

बदली जीवन की परिभाषा, सीखी मन–नयनों की भाषा,
आँसू सारे फूल बन गये, आनंदित संसार हो गया।

❖❖❖

मनुष्यता का दुःख

- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

इसकी कथा अनन्त है।
कोई नहीं कह सका इसे पूरी तरह,
कोई नहीं लिख सका संपूर्ण,
किसी भी धर्म में, किसी भी पोथी में–
अँट नहीं सका यह पूरी तरह।
हर रूप में कितने–कितने रूप,
कितना–कितना बाहर–
और कितना–कितना भीतर।
क्या तुम देखने चले हो दुःख,
नहीं जाना है, किसी भविष्यवक्ता के पास।
न अस्पताल न शहर न गाँव न जंगल,
जहाँ तुम खड़े हो
देख सकते हो वहीं।
पानी की तरह राह बनाता नीचे
और नीचे,
आग की तरह लपलपाता,
समुद्र–सा फुफकारता, दुःख–
कोई पंथ कोई संघ
कोई हथियार नहीं,
कोई राजा कोई संसद
कोई इश्तिहार नहीं।
तुम
हाँ–हाँ तुम
सिर्फ हथेली से उदय हो
तो चुल्लू भर कम हो सकता है
मनुष्यता का दुःख।

❖❖❖

सावन चहुँ ओर सघन नाचे

– हंसकुमार तिवारी

सावन चहुँ ओर सघन नाचे,
चंचल मनमोर मगन नाचे।

सन–सन की बीन बजे, मेघों का माँदर
झम–झम की झाँझ और रिमझिम का झाँझर।
चपला चितचोर नयन नाचे।
सावन चहुँ ओर सघन नाचे।

खेतों में धान हँसे, बागों में कलियाँ,
तरुओं की रानी की वन–वन रंगरलियाँ।
यौवन मदभोर भुवन नाचे।।
सावन चहुँ ओर सघन नाचे।

कानन के हाथ बँधी लत्तर की राखी,
जाने न नाम रटे कोई बन पाँखी।
पानी में पौर अगन नाचे।
सावन चहुँ ओर सघन नाचे।

फूलों पर तितली का रंग–रंगा डैना,
नाचती सुहागिन ज्यों देख–देख ऐना।
आँखों की कोर गगन नाचे।
सावन चहुँ ओर सघन नाचे।

❖❖❖

और नहीं, बस और नहीं, गम के प्याले और नहीं

- संतोषानन्द

और नहीं, बस, और नहीं, गम के प्याले और नहीं।
दिल में जगह नहीं बाकी, रोक नजर अपनी साकी,
और नहीं, बस, और नहीं, गम के प्याले और नहीं...।

सपने नहीं यहाँ तेरे, अपने नहीं यहाँ तेरे,
सच्चाई का मोल नहीं, चुप हो जा कुछ बोल नहीं।
प्यार–प्रीत चिल्लाएगा तो अपना गला गँवाएगा,
पत्थर रख ले सीने पर कसमें खा ले जीने पर।

गौर नहीं है, गौर नहीं, परवानों पर गौर नहीं,
आँसू–आँसू ढलते हैं, अंगारों पर चलते हैं।
और नहीं, बस, और नहीं, गम के प्याले और नहीं...।

कितना पढ़ूँ जमाने को, कितना गढ़ूँ जमाने को,
कौन गुणों को गिनता है, कौन दुखों को चुनता है।
हमदर्दी काफूर हुई, नेकी चकनाचूर हुई,
जी करता बस, खो जाऊँ, कफन ओढ़ कर सो जाऊँ।

दौर नहीं, ये दौर नहीं, इंसानों का दौर नहीं,
फर्ज यहाँ पर फरजी है, असली तो बस खुदगर्जी है।
और नहीं, बस, और नहीं, गम के प्याले और नहीं...।

बीमार हो गई दुनिया, बेकार हो गई दुनिया,
मरने लगी शरम अब तो, बिकने लगे सनम अब तो।
ये रात है नजारों की, गैरों के साथ यारों की,
तो डीहें बिगाड़ दूँ सारी, दुनिया उजाड़ दूँ सारी।

जोर नहीं है, जोर नहीं, दिल पे किसी का जोर नहीं,
कोई आग मचल जाए तो सारा आलम जल जाये।
और नहीं, बस, और नहीं, गम के प्याले और नहीं...।

❖❖❖

पेट का सवाल है

- शैल चतुर्वेदी

बीस साल पहले
हमने कोशिश की,
हमें भी मिले
कोई नौकरी अच्छी–सी
इसी आशा में दे दी
दरख़्वास्त
एम्पलायमेंट एक्सचेंज में।
बीस साल की एज में
गुजर गए आठ साल,
कोई जवाब नहीं आया।
और एक दिन प्रातःकाल
एम्पलायमेंट एक्सचेंज वालों का
पत्र आया,
इंटरव्यू के लिए
गया था बुलाया।

हम बन–ठन कर,
राजकुमारों की तरह तनकर,
पहुँचे रोजगार दफ्तर,
बतलाया गया–
जगह एक खाली है
सर्कस में बन्दर की।

भागते भूत की लँगोटी भली
सोचकर, हाँ कर दी
हमारी डाक्टरी जाँच की गई
कूदने फांदने की
सात दिन बाद
शो में लाया गया।

उचक–उचक कर
दिखा रहे थे कलाबाजियाँ,
दर्शक–गण बुद्धू बने
बजा रहे थे तालियाँ।
तभी अकस्मात
छूट गया हाथ
जा गिरे
कटघरे में शेर के,
गिरते ही, चिल्लाए–
बचाओ–बचाओ।

तभी शेर बोला–शोर मत मचाओ,
पेट का सवाल है,
हमारे ऊपर भी
शेर की खाल है।
हम भी है तुम्हारी तरह सिखाये हुए,
एम्पलायमेंट एक्सचेंज के लगाये हुए।

❖❖❖

जोकर

– प्रकाश मनु

सबका मन बहलाता जोकर,
हँसता और हँसाता जोकर।

झूम–झामकर यह आता है,
नए करिश्में दिखलाता है।

उछल बाँस पर चढ़ जाता है,
हाथ छोड़कर लहराता है।

सिर के बल यह चल सकता है,
आग हाथ पर मल सकता है।

जलती हुई आग की लपटें,
उछल, पार करता यह झट से।

अगले पल फिर हल्ला–गुल्ला,
गाल फुलाता ज्यों रसगुल्ला।

ढीला–ढाला खूब पजामा,
लगता है यह सचमुच गामा।

फुलझड़ियों–सी हैं मुसकानें,
फूलों–जैसे इसके गाने।

हरदम हँसता यह मस्ताना,
खुशियों का है भरा खजाना!

❖❖❖

पापा

– प्रभुदयाल श्रीवास्तव

मोबाइल में ज्ञान इस तरह–
का कुछ पापा भर दो।
हर आदेश हमारा माने,
विवश इस तरह कर दो।

हम माँगे रसगुल्ले उससे,
दौड़ लगाकर लाये।
अपने हाथों से हम लोगों,
के मुँह तक पहुँचाये।

अरे–अरे क्या कहते! बोले,
पापा बात निराली।
क्यों करते हो बात नकारों–
और निकम्मो वाली।

काम हाथ से करने वाले–
ही मंजिल पाते हैं।
जो निर्भर होते औरों पर,
राह भटक जाते हैं।

❖❖❖

चिड़िया का घर

- हरिवंश राय बच्चन

चिड़िया, ओ चिड़िया,
कहाँ है तेरा घर?
उड़–उड़ आती है–
जहाँ से फर–फर।

चिड़िया, ओ चिड़िया,
कहाँ है तेरा घर?
उड़–उड़ जाती है–
जहाँ को फर–फर।

वन में खड़ा है जो–
बड़ा–सा तरुवर।
उसी पर बना है,
खर–पातों वाला घर।

उड़–उड़ आती हूँ
वहीं से फर–फर।
उड़–उड़ जाती हूँ
वहीं को फर–फर।

❖❖❖

आ रही रवि की सवारी

आ रही रवि की सवारी।
नव–किरण का रथ सजा है,
कलि–कुसुम से पथ सजा है,
बादलों–से अनुचरों ने
स्वर्ण की पोशाक धारी।

आ रही रवि की सवारी।

विहग, बंदी और चारण,
गा रही है, कीर्ति–गायन,
छोड़कर मैदान भागी,
तारकों की फौज सारी।

आ रही रवि की सवारी।

चाहता, उछलूँ विजय कह,
पर ठिठकता देखकर यह,
रात का राजा खड़ा है,
राह में बनकर भिखारी।

आ रही रवि की सवारी!

❖❖❖

चंदा मामा

– निधि अग्रवाल

चंदा मामा दूर गगन से,
मेरे घर भी आओ ना।
गाकर लोरी मीठी–मीठी,
मुझको तुम सुलाओं ना।

ले जाकर मुझे बादलों में,
मेरा मन बहलाओ ना।
अपनी गोदी के पलने में मुझको,
झूला तुम झुलाओ ना।

आसमान की दुनिया में,
मुझको तुम सैर कराओ ना।
मस्त पवन के झोंको से,
मेरा सिर सहलाओं ना।

मेरे सपने को सच करने,
चंदा मामा आओ ना।
गाकर लोरी मीठी–मीठी,
मुझको तुम सुलाओं ना।

चंदा मामा दूर गगन में,
रोज रात को आते हो।
पर एक बात समझ नही आई,
दिन में कहाँ छुप जाते हो।

कभी बड़े, कभी तुम छोटे,
कभी गोल–गोल बन जाते हो।
इतने सारे रूप मगर, तुम–
बोलो, कहाँ से लाते हो।

कभी यहाँ, तो कभी वहाँ,
कहाँ–कहाँ तुम जाते हो।
कभी बादलों की ओट में,
चुपके से छुप जाते हो।

❖❖❖

माँ

- भारती

तुम जो चल पड़ी अनंत यात्रा के पथ पर
सुगंध विहीन हो गए गुलाब सारे।
विलीन हो गई पाजेब की झनकार
और मूक हो गए सरगम के सातों स्वर।
अब भी जब यादों के पंछी फड़फड़ाते हैं, अपने पंख–
खोलकर झरोखे स्मृति के।
तो लगता है तुम यही हों
मेरे नजदीक, बिलकुल समीप।
बिंदिया सजाती, चूड़ी खनकाती,
तुलसी के पौधे पर जल चढ़ाती,
सांध्य दीप जलाती,
मेरी पसंद का भोजन बनाती,
लाड़–मनुहार से मुझे खिलाती।
हाँ यहीं तो थीं, तुम
गीता ज्ञान मुझे बताती,
संस्कारों का पाठ पढ़ाती,
मेरी नासमझी को अपनी
समझ से सँवारती,
मेरी विदाई पर आँसू बहाती,
मेरे बिखेरे चावल अपने
आँचल में संजोती।
हाँ! यहीं तो थीं, तुम–
और शायद आज भी यहीं हो
मेरी स्मृति में, संस्कारों में,
मेरी उपलब्धियों में, मेरे विचारों में,
मेरी हँसी में, मेरे गम में,
मेरे अस्तित्व के हर रोम में,
रची बसी बस तुम ही, हो।
हाँ माँ,
तुम न होकर भी यहीं हो।
क्योंकि अपने रूप में रचा है तुमने मुझे,
अपनी परछाई, अपनी पहचान बनाकर।

❖❖❖

जीत के पल

- भावना तिवारी

हम अभावों की धरा पर
वैभवी सपने सँजोकर
कर्मपथ पर चल पड़े हैं,
मुट्ठियों में कैद करने जीत के पल।

पंक–तट आवास अपना
सोचते हैं घर कहीं हो,
भोगते दुर्गन्ध फिर भी
चाहते मधुपुर कहीं हो।

चाहना की इस त्वरा में,
स्वेद की बूँदें घँघोकर।
शूलपथ पर चल पड़े हैं,
मुट्ठियों में कैद करने शीत के पल।

गुदड़ियों में जी रहे हैं,
टाट के पैबंद लेकर।
हर घड़ी मर–मर जिये हैं,
चंद बँधुआ साँस लेकर।

आस का चूल्हा जलाकर
झोंकते हैं, आज अपना
नियतिपथ पर चल पड़े हैं,
मुट्ठियों में कैद करने प्रीत के पल।

साँस खुलकर ले सकें हम,
है, कहाँ अधिकार इतना।
तृप्ति मिलती, पेट भरता,
है नहीं व्यापार इतना।

चेतना अपनी जगाकर,
भाग्य को आँखें दिखाकर,
दीप्तपथ पर चल पड़े हैं,
मुट्ठियों में कैद करने गीत के पल।

❖❖❖

अदृश्य

– मंजूषा

सड़क पर बेतहाशा भागती वो
उसके पीछे भागते
चार–चार पहाड़ से गुंडे देख
रुक जाते हैं सहम कर
आते, जाते लोग।

देखते हैं भय और संवेदना से
और अगले ही पल
घबराकर
हो जाते हैं, अदृश्य,
अपनी आँखों और मस्तिष्क से
कर देते हैं अदृश्य।
पूरा का पूरा दृश्य।

पड़ोस के घर से आतीं
गालियों की आवाज,
पीड़ा भरी चीखों की गूँज
सुनकर जमा हो जाते हैं लोग।
करते हैं,
आपस में खुसुर–पुसुर,
चीखों की आवाज बढ़ने पर,
बेहतर समझते हैं अदृश्यता।

किसी दुर्घटना ग्रस्त वाहन से
बहते हुए रक्त की
मोबाइल में लेकर तस्वीरें
अफसोस जता,
आहों और कराहों से बचने
हो जाते हैं, अदृश्य।

हरबार
किसी को बचाने से
अधिक बेहतर समझते हैं,
खुद बचना,
किसी सम्भावित संकट से,
घटना स्थल पर होते हुए भी
हो जाते हैं, अदृश्य...

❖❖❖

आत्मसंवाद

– राखी सिंह

क्या सच में इतना मुश्किल था?
सड़क पर किसी पिल्ले को लगी चोट से द्रवित होने वाला मन।
देता रहा चोट किस तरह स्वयं को
दूर देश की किसी घटना से व्यथित हो उठने वाले हृदय ने–
अपने ही प्रति कैसे बरती इतनी निष्ठुरता।
कहीं से आती धमाकों की आवाज, उससे दहल उठने वाली छाती के कानों ने
कैसे सहा होगा, दिल के चूर होने की चीत्कार।
मैं, जिसे एक हरे पत्ते का पीला पड़ जाना भर देता हो उदासी से,
अपनी गुलाबी मुस्कुराहटों का पीलापन।
स्वीकार था सहर्ष ही?
चुटकी भर बारिश में तर,
मुट्ठी भर बादल पर सवार,
उड़ने वाली कामनाओं ने क्योंकर
अपने ही पंजों से नोच डाला
अपना आकाश।
झिर्रियों के अवसर तलाशती अस्तित्व–
को चुभने लगी हवायें क्यों,
क्या इतना दुष्कर था साथ हमारा
कि रख ली हमने दूरियों की भभकती चिंगारी।
तुमने बायीं जेब में
मैंने कपड़े के भीतर, सीने के पास।
क्या इतना मुकम्मल था रूठे रहना,
क्या इतना मुश्किल था, हमारा मना लेना।
तुम कह दो एक बार,
तुम कहोगे तो मैं मान लूँगी
कि ये मेरे और तुम्हारे बनाये बहाने नहीं
ये सचमुच इतना ही मुश्किल था!

❖❖❖

वक्त

- लता सिन्हा 'ज्योतिर्मय'

पल–पल, क्षण–क्षण कर फिसल रहा है,
हाथ से वक्त का धागा रे।
ओ मन... अब तू जरा सँभल, सँभल
क्या नींद खुली, क्या जागा रे...?

न वक्त के बढ़ते कदम रुके
न कोई चाल कभी देखे,
इस समय को वश में करने की
कोई लाखों चालाकी सीखे।
है वक्त का पहिया घूम रहा,
स्वयं ब्रह्म इसी में लागा रे...?
ओ मन... अब तू जरा सँभल, सँभल
क्या नींद खुली, क्या जागा रे...?

कोई राज करे कोई रंक भले
पर एक विधाता की न चले।
जो आज गिरा हो गर्दिश में
कल उदयमान हो गगन मिले।
वक्त ने हर एक जख्म भरे
मरहम बनकर जब लागा रे...।
ओ मन. अब तू, जरा सँभल, सँभल
क्या नींद खुली... क्या जागा रे...?

एक वक्त रहा यहाँ रामराज
वही राम कभी वनवास किये,
गांधारी के सौ पुत्र रहे
सब धर्म विरुद्ध ही काज किये।
जो फँसा समय के चक्रव्यूह में
अभिमन्यु क्या भागा रे...?

ओ मन... अब तू, जरा सँभल, सँभल
क्या नींद खुली... क्या जागा रे...?

कर नवयुग की स्थापना, कल–
युग बदलेगा, निश्चय हो अटल।
कई क्रांतिवीर की उपलब्धि
मिली शिलालेख, थी एक पहल।
स्वर्णिम अक्षर हो ज्योतिर्मय,
टूटे जब श्वास का धागा रे...।
ओ मन. अब तू, जरा सँभल, सँभल
क्या नींद खुली, क्या जागा रे...?

❖❖❖

ओस भरी दूब पर

- शांति सुमन

टहनी को चिन्ता है जड़ की,
जड़ को फूलों की,
इसी तरह से गुजर–बसर चलता है, मौसम में।

आयेगी चिड़िया पहले
पत्तों से बतियाएगी,
धूप–हवा का हाल–चाल–
ले धीरे उड़ जायेगी।

ओस भरी दूबों पर सरकी,
छाया धूपों की,
यही प्यार नहलाता सबको खुशी और गम में।

शनिगांधार बजाती लहरी
हरियाती लतरें,
उजली–नील धार में लिखती
मन की कोमल सतरें।

नहीं सूखती नदी आज भी
गाँव सिवाने की,
फसलों के सुर में बजती हैं, तानें सरगम में।

सड़क–किनारे हाथ उठाये
घर की नई कतारें,
खिड़की–दरवाजे से होकर
पहुँची जहाँ बहारें।

मैली होकर भी उजली हैं
आँखें सिलहारिन की,
अपने भीतर कई हाथ उगते जिनके श्रम में ।

❖❖❖

भावों की कीमत

- साधना जोशी

अगर भाव न होते हृदय में,
तो सारा जग सूना होता ।
न माँ की ममता होती,
और न रिश्ते–नाते होते ।

दया, धर्म भी छिप जाते,
न कोई अपना कहलाता ।
घर द्वार का अस्तित्व भी,
धरती पर कहीं न दिखता ।

अगर भाव न होते हृदय में,
तो सारा जग सूना होता ।
बहनों का कहीं प्यार होता,
भाई का दुलार न होता ।

कोई मित्र न होता दुनिया में,
सोचो कैसा ये जग होता ।
अगर भाव न होते हृदय में,
तो सारा जग सूना होता ।

मान मर्यादा नैतिक मूल्यों से,
धरती खाली होती ।
न देश भक्त, न वीर–जवान,
बेटा कोई न पिता होता ।

अगर भाव न होते हृदय में,
तो सारा जग सूना होता ।
आँख में आँसू नहीं होते,
किसी के दुःख में न दिल रोता ।

मुस्कान को कहाँ से लाते हम,
मानव पत्थर जैसा होता ।
अगर भाव न होते हृदय में,
तो सारा जग सूना होता ।

कीमत पहचानों भावों की,
इसको विकसित करना है ।
इसीलिए समाज के साथ में,
हमको भी घुलना, मिलना है ।

अगर भाव न होते हृदय में,
तो सारा जग सूना होता ।

❖❖❖

डर

- स्मिता झा

मैं डरती क्यों हूँ...?
अक्सर सोचा है मैंने...
और तय किया है,
डर से बाहर हो जाऊँगी, एक दिन...

वो दिन आता नहीं कभी
और हर दिन
एक नामालूम–सा डर मुझे घेरे रहता है...
कहीं भी कभी भी
हाट में, बाजार में
बगीचे में भी,
ट्रेन में, बस में
रिक्शे में भी,
स्कूल में, कॉलेज में
ऑफिस में भी,

इसके घर, उसके घर
अपने घर में भी,
डरना नहीं,
नहीं डरना
पर, डर से बचना
कितना मुश्किल।

उस डर...से
जो स्त्री की पैदाइश से मृत्यु तक
हावी रहता है कहीं न कहीं...।

❖❖❖

तुम तो आकाश हो

- सरोज सिंह

नेह के नीले एकांत में
क्षितिज की सुनहरी पगडंडी पर
चलते हुए...
तुम्हारे होने या ना होने को
सूर्यास्त से सूर्योदय के बीच
कभी विभक्त नहीं कर पायी मैं।
जाने कब से
धरती पर चलती आ रही, मैं,
इस ज्ञान से परे, कि
तुम अपनी छत्रछाया में
संरक्षित करते आये हो मुझे।
अपनी थाली में परोसते रहे
मन भर अपनापन
ना होते हुए भी तुम्हारे होने का
आभास होता रहा मुझे।
ऋतुएँ संबंधों पर भी
अपना असर दिखाती हैं शायद–
चटकती बिजली ने
तुम्हारे सिवन को उधेड़ते हुए
जो दरार डाली है,
तुम्हारी श्वेत दृष्टि अब श्यामल हो उठी है।
या तुम बहुत पास हो
या कि बहुत दूर
पर वहाँ नहीं हो जहाँ मैं हूँ।
संबंधों पर ठण्ड की आमद से
सूरज भी अधिक देर तक नहीं टिकता।
ऐसे अँधेरे से घबराकर मैं
स्मृतियों की राख में दबी
चिंगारियों को उँगलियों से
अलग कर रही हूँ।
किन्तु उससे रोषनी नहीं होती
बल्कि उँगलियाँ जलतीं है!
तुम्हें दस्तक देना चाहती हूँ
पर तुम तो आकाश हो ना,
कोई पट–द्वार नहीं तुम्हारा
बोलो...तो कहाँ दस्तक दूँ?
जो तुम सुन पाओ।

❖❖❖

विजेता

- सरिता तिवारी

उगने के लिए बाकी
जितनी भी रोशनियाँ हैं, तुम्हारी हैं।
खुलने के लिए बाकी आकाश,
खिलने के लिए बाकी फूल,
और चलने के लिए बाकी रास्ता,
सभी तुम्हारे हैं।
तुम्हारे ही हैं चाँद और सितारों के गीत,
जादुई उपत्यका, पहाड़ और समुद्र की कहानी,
सहस्र कल्पना और उनके हरेक पंख,
तुम जहाँ पर खड़े हो वह धरती तुम्हारी ही है,
यह आँधी और बौछार का संगीत तुम्हारा ही है।
इस आग के लपके में जल रहा
तप्त विद्रोह भी तुम्हारा ही है।
बढ़ने के लिए जितना चाहिए आसमान वह तुम्हारा ही है,
फैलने के लिए जितना चाहिए क्षितिज वह तुम्हारा ही है,
तुम्हारे साथ ही सुरक्षित है नैसर्गिक
तुम्हारी उड़ान
और तुम्हारे प्रिय सपने
जैसे घास, पेड़ और जंगल
जैसे हवा, पानी और बादल
उतने ही स्वतन्त्र हो तुम,
इस मिट्टी के ऊपर खड़ा होने के लिए,
और अपनी राह बनाकर चलने के लिए।
तुम्हारे साथ
जो पल रहा है विचार और संकल्प,
वह केवल तुम्हारा है।
मनुष्य के दुःख और दासता के बारे में,
उनके मोक्ष और मुक्ति के बारे में।
जो हैं सवाल तुम्हारे पास
तुम्हारा ही है।
तुम्हारे द्वारा तय किये गये लक्ष्य
और जब तक बाकी हैं,
इन्सान होकर जिन्दा रहने का लक्ष्य
होंगे तुम सदा विजेता।

❖❖❖

न मेरा है न तेरा है ये हिन्दुस्तान सबका है

- उदयप्रताप सिंह

न मेरा है न तेरा है, ये हिन्दुस्तान सबका है,
नहीं समझी गई ये बात तो नुकसान सबका है।

हजारों रास्ते खोजे गए उस तक पहुँचने के,
मगर पहुँचे हुए ये कह गए, भगवान सबका है।

जो इसमें मिल गईं नदियाँ वे दिखलाई नहीं देतीं,
महासागर बनाने में मगर एहसान सबका है।

अनेकों रंग, खुशबू, नस्ल के फल–फूल पौधे हैं,
मगर उपवन की इज्जत–आबरू ईमान सबका है।

हकीकत आदमी की और झटका एक धरती का,
जो लावारिस पड़ी है धूल में सामान सबका है।

जरा से प्यार को खुशियों की हर झोली तरसती है,
मुकद्दर अपना–अपना है, मगर अरमान सबका है।

उदय झूठी कहानी है सभी राजा और रानी की,
जिसे हम वक्त कहते हैं, वही सुल्तान सबका है।

❖❖❖

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं

- शकील बदायूनी

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं,
सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं।

हमने सदियों में ये आजादी की नेमत पाई है,
सैंकड़ों कुर्बानियाँ देकर ये दौलत पाई है,
मुस्कुरा कर खाई हैं सीनों पे अपने गोलियाँ,
कितने वीरानों से गुजरे हैं तो जन्नत पाई है।
खाक में हम अपनी इज्जत को मिला सकते नहीं।
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं।।

क्या चलेगी जुल्म की अहले–वफा के सामने,
आ नहीं सकता कोई शोला हवा के सामने,
लाख फौजें ले के आये अमन का दुश्मन कोई,
रुक नहीं सकता हमारी एकता के सामने।
हम वो पत्थर हैं जिसे दुश्मन हिला सकते नहीं।
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं।

वक्त की आवाज के हम साथ चलते जायेंगे,
हर कदम पर जिन्दगी का रुख बदलते जायेंगे,
'गर वतन में भी मिलेगा कोई गद्दारे वतन,
अपनी ताकत से हम उसका सर कुचलते जायेंगे।
एक धोखा खा चुके हैं और खा सकते नहीं।
अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं।।

हम वतन के नौजवां हैं, हम से जो टकरायेगा,
वो हमारी ठोकरों से खाक में मिल जायेगा,
वक्त के तूफान में बह जायेंगे जुल्मो–सितम,
आसमां पर ये तिरंगा उम्र भर लहरायेगा।
जो सबक बापू ने सिखलाया भुला सकते नहीं।
सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं।।

❖❖❖

जिन्दगी समेटते हुए

– अंचित

बहुत कम
थोड़ा कुछ ही करना पड़ता है
सुव्यवस्थित।

चार उधार लाई किताबें,
थोड़ा कुछ बचा रह गया चबेना...
एक आध अधूरी कहानी,
बक्से में बहुत नीचे छुपा कर रखी हुई एक अँगूठी,
(जिसको खोजते हुए पूरा दिन एक बार लग गया था।)
यही सब कुछ।
थोड़ा इधर, थोड़ा उधर।

फिर शाम की बस से जैसे झोला लटकाये
निकल जाना होता है कहीं।
जैसे आप जाते हैं नाटक देखने
या एक शाम दोस्तों से मिलने किसी चाय की दूकान तक,
या फिर बनिए की दूकान–
खरीदने बर्तन धोने का साबुन।

अनवरत चलती रहती है सब समेटने की कोशिश
सोचता है हर आदमी
जाने से पहले।

❖❖❖

झुके फाइलों पर

- किशन सरोज

झुके फाइलों पर अब, घुँघराले केश
बिसरे सन्देश, याद केवल आदेश।

भोर ही निकलते हम
काँधे पर सूर्य लिये,
दफ्तर से घर तक हम ढोते हैं शाम।
अँधियारी गलियों में
दरवाजे पर अँकित
पढ़ा नहीं जाता फिर अपना ही नाम।
मन नहीं भटकता अब परियों के देश।
बिसरे सन्देश, याद केवल आदेश।

तारे अब लगते हैं
चावल के दानों से,
अनचाहे आस–पास बढ़ रहा है उधार,
पहली तिथि, पन्द्रह दिन
पहले आ जाये तो
पन्द्रह दिन आयु घटाने को तैयार।
फबता है साबुन से उजलाया वेश।
बिसरे सन्देश, याद केवल आदेश।

इन्द्रधनुष को देखे
कितने ही बरस हुए
अर्थ नहीं रखता कुछ प्रात का समीर,
जाने कितने पीछे
छूट गया वंशीवट
खो गया कुहासे में यमुना का तीर
हम न किसी राधा के द्वारिका–नरेश
बिसरे सन्देश, याद केवल आदेश।

❖❖❖

प्रेम हमारा

- विजयशंकर चतुर्वेदी

मैंने देखा तुम्हें गुलफरोश के यहाँ
गुलाब चुनते हुए
देखता ही रहा।
तुम वे फूल चढ़ा सकती थीं मंदिर में,
या खोंस सकती थीं जूड़े में,
मगर रख आईं समंदर किनारे रेत पर मेरा नाम खोदकर।
भेजता हूँ प्रेम संदेश
उपग्रहों से होते हुए पहुँचते हैं तुम तक
मेरी मशीन पर उभर आता है तुम्हारा चेहरा।
बनाती हो तुम भी कम्प्यूटर पर मेरी तस्वीर
भरती हो उसमें मनचाहे रंग,
फिर सुरक्षित कर लेती हो मुझे स्क्रीन पर
हमेशा के लिए।
गली–गली मारे फिरने की फुरसत कहाँ हमें?
यह भी नहीं कि किसी बाग–बागीचे जायें,
विक्टोरिया पर मरीन ड्राइव का चक्कर लगायें,
हाथ में हाथ, आँखों में आँखें डालें,
चौपाटी पर पैरों से पानी उछालें,
मनुष्य होने के उत्सव मनायें।
रोबोट बना जड़ दिये जाते हैं हम कुर्सियों पर।
लगातार झरती है हमारे दिल पर
रेडियो विकिरण की धूल,
जैसे साइबर स्पेस में मँडराता हो कोई जलता बगूल।
अब कहाँ रहा आग का वह दरिया?
हमें तो जाना होगा अंतरिक्ष के पार,
क्या पता किसी ग्रह से आ जाये
तुम्हारे लिए प्रकाशपुंजीय तार।
और मैं उड़ जाऊँ हमेशा के लिए तुम्हारी स्क्रीन से।
कल सारी रात बनाता रहा
तुम्हारे चेहरे का कोलाज,
मगर हर रंग लगा मुझसे थोड़ा नाराज।
वैसे तो मुझको तुम सुंदर लगती पूरे मन से,
मुस्करा लेती हो मशीन पर इतने भोलेपन से।

❖❖❖

दया

- विमल कुमार

तुम पर बहुत दया आती है मुझे।
बाथरूम में उल्टियाँ करने के बाद
अब आलोचना में भी करने लगे हो।
मैं देख रहा हूँ
तुम वर्षों से बीमार हो,
पीले पड़ गये हो–
खाट पर लेटे–लेटे।
तुम किसी डॉक्टर को दिखाते क्यों नहीं,
इस बुढ़ापे में।
कहो, तो मैं तुम्हें ले चलूँ,
एक डॉक्टर है मेरा परिचित
वह तुम्हारा बीमा भी करवा देगा।
लड़कियाँ जब छोड़ देती हैं
बूढ़े बाप को
और लड़के खयाल नहीं करते
तो किसी के साथ ऐसा हो सकता है।
खुदा करे
हमें यह दिन देखने को न मिले।
मरने से पहले तुम सच कह लेना चाहते हो
पर यह तरीका नहीं है।
तुम्हारी अतृप्त कामनाओं ने
तुम्हें बीमार बना दिया है, जिसको देखो
जमाने ने तीमारदार बना दिया है।

❖❖❖

काशी की गलियाँ

- सुधांशु उपाध्याय

ये बसरे के मोती छिटके
या जूही की कलियाँ हैं।
कसे हुए दाने हैं भीतर
हरी मटर की फलियाँ हैं।

अटक–अटक कर किसी मोड़ से
लौट वहीं पर आते हैं,
तिरछे–बाँके मोड़ हमें ये
बार–बार भटकाते हैं।
ये आँखों के पतले डोरे
या काशी की गलियाँ हैं।

रंग बज रहे खुली हवा में
सरसों हिलती है,
कहीं–कहीं पर धूप से ज्यादा
छाया खिलती है।
जुड़ी हथेली और बीच में
उड़ती हुई तितलियाँ हैं।

मौसम की रंगीन इबारत
इन्हें ठीक से पढ़ना है,
इंद्रधनुष कुछ नये रंग के
आसमान में गढ़ना है।
कसी गाँठ को खोल रहीं फिर
परिचित वही उँगलियाँ हैं।

❖❖❖

दीप पर्व इस बार मनायें

- सुनील त्रिपाठी

दीप पर्व इस बार मनायें, उन लोगों की खातिर।
एक दीप हम चलो जलायें, उन लोगों की खातिर।

बिगुल क्रान्ति का बजा जिन्होंने गोरों को ललकारा,
खून हमें दो, आजादी हम, देंगे फूँका नारा।
इंकलाब का लगा घोष जो, फाँसी पर थे झूले,
जन्मदिवस बलिदान दिवस हम जिन वीरों के भूले।
शीश झुका सम्मान जतायें, उन लोगों की खातिर।
एक दीप हम चलो जलायें, उन लोगों की खातिर।

तापमान ऋण शून्य, डाल जो, शिविर पड़े रहते हैं,
जो सरहद पर बन अभेद्य, दीवार खड़े रहते हैं।
कारण जिनके आजादी के, जश्न देश में होते,
जिनके सतत् जागरण से हम, रात चैन से सोते।
गीत शौर्य के मिलकर गायें, उन लोगों की खातिर।
एक दीप हम चलो जलायें, उन लोगों की खातिर।

❖❖❖

यह घड़ी

- सत्येन्द्र श्रीवास्तव

सामने जो बुत बनी–सी चुप खड़ी है।
वह परीक्षण की घड़ी है।

डेस्क पर रक्खे पड़े हैं कई कोरे पृष्ठ,
उँगुलियों में जड़ हुई सहमी रुकी पेंसिल।
दृष्टियों में बाढ़ है बीते हुए कल की,
बह रहे हैं धड़ों से अलगा चुके कुछ दिल।

अरथियाँ हैं स्याह क्षितिजों की,
लाश किरणों की पड़ी है।

मोह आहत, सीढ़ियों पर झुका, बैठा दम्भ,
चल रही है ग्रीक ट्रेजडी, गिर रहे स्तम्भ।
संतरी खुद बन गया खलनायकों का नृप,
यहाँ विधिवत हो रहा है नाश का आरम्भ।

प्यार है अपशब्द जग के कोश में,
सुधि परीक्षक की छड़ी है।

फैलती खामोशियाँ, हर इंच पीड़ा की दरक,
हर जगह है प्रश्न, उत्तर अब न लाते कुछ फरक,
सिर नहीं खुजला रहे हम हैं समय को नोचते,
उम्र की जलधार में हर क्षण मगर जाता सरक।

सृष्टि अपनी बेबसी की श्रृंखला,
पीढ़ियों की यह कड़ी है।

❖❖❖

पिता

- हेमन्त जोशी

रात के अंतिम पहर में
नींद के बीहड़ से मीलों दूर
घूमने निकलता हूँ जब
अपने ही भीतर पाता हूँ तुम्हें
किसी बंद दरवाजे सा।
झाँकने पर भीतर
दीखता है तुम्हारा रक्त–रंजित ललाट।
तुम वह नहीं थे जो हो
लौट आता हूँ सहम कर,
न चाहते हुए भी तुमने
व्यवस्था को गहा,
लड़ते रहे
सब कुछ सहा,
जो कुछ रहा
मेरे भीतर।
बंद दरवाजे के पीछे
तुम्हारा रक्त–रंजित ललाट।
मैं नहीं ढो सकता पिता
तुम्हारी तरह
इस चरमराते तंत्र को,
पुरातन और आधुनिकता की खिचड़ी को
मैंने आधुनिकता चुनी
बंद दरवाजे के पीछे,
तुम्हारी चीख सुनी।
रुको पिता रुको
मत बनो मेरे पथ–प्रदर्शक,
खोजने दो अपनी राह स्वयं ही।
हाँ! रातों में
नींद के बीहड़ से दूर।
लौट आऊँगा तुम्हारे पास,
बैठेंगे अलाव के आस–पास,
खोलेंगे, अपनी–अपनी पोटली,
तौलेंगे, अपने–अपने अनुभव।
गिनेंगे अपने–अपने हिस्से के काँटे।

❖❖❖

परिवर्तन आने वाला है

- हिमांशु पाण्डेय

बज गयी दुन्दुभि, परिवर्तन आने वाला है ।

है निस्सीम अगाध अकल्पित, समय शून्य का यह विस्तार,
प्रिय देखो वह चपल विहंगम चला जा रहा पंख पसार,
काल अमर है का संकीर्तन यही विहग गाने वाला है ।

वह देखो गिर रहे दुखों के पीत–पात झर–झर सत्वर,
उर में भी गुंजरित हो रहा मधुरिम सुख का मादक स्वर,
इसी हास के शैशव का अल्हड़पन अब आने वाला है ।

जीवन के कितनों रंगों से निज मन को रंगता आया हूँ,
पर स्नेहिल तेरी स्मृति से दूर नहीं मैं जा पाया हूँ,
तेरी मधु यादों का संचन अंतर्मन हरने वाला है ।

जो बीत गया है, उसे नशे की रात समझ लो, स्नेहिल साथी,
जो आयेगा उसे हृदय की बात समझ लो, स्नेहिल साथी,
आगत क्षण में हर प्रेमी ही प्रीति सुरा पीने वाला है ।

आशा है हम विहँसेंगे ही प्रेम हास से बिंध जायेंगे,
माधुर्य–समर्पण–प्रीत त्रिवेणी निज मानस में लहरायेंगे,
नया वर्ष मंगलमय होकर सब पर सज जाने वाला है ।

परिवर्तन आने वाला है ।

❖❖❖

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

जन्म-15 सितम्बर, 1927 निधन-24 सितम्बर, 1983

अब मैं कुछ कहना नहीं चाहता,
सुनना चाहता हूँ
एक समर्थ सच्ची आवाज,
यदि कहीं हो।
अन्यथा
इससे पूर्व कि
मेरा हर कथन,
हर मंथन,
हर अभिव्यक्ति–
शून्य से टकराकर फिर वापस लौट आये,
उस अनंत मौन में समा जाना चाहता हूँ,
जो मृत्यु है।

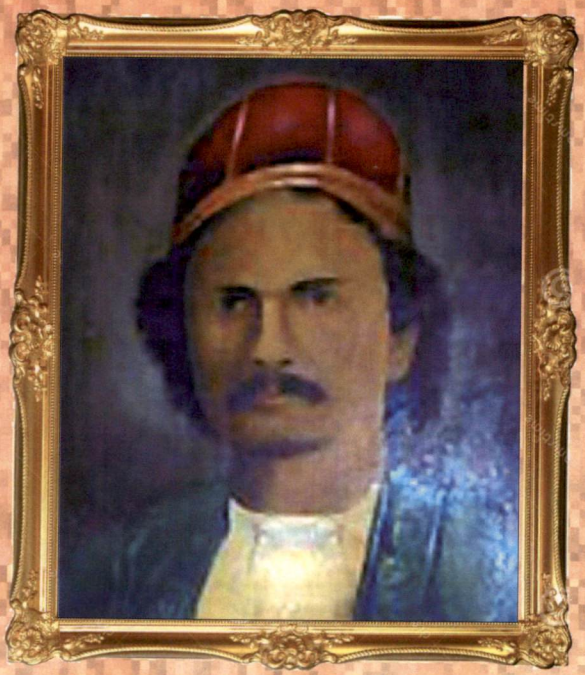

भारतेंदु हरिश्चंद्र

जन्म- 09 सितम्बर 1850 निधन- 06 जनवरी 1885

जागे मंगल–रूप सकल ब्रज–जन–रखवारे।
जागो नन्दानन्द –करन जसुदा के बारे,
जागे बलदेवानुज रोहिनि मात–दुलारे,
जागो श्री राधा के प्रानन ते प्यारे।
जागो कीरति–लोचन–सुखद भानु–मान–वर्धित–करन।
जागो गोपी–गो–गोप–प्रिय भक्त–सुखद असरन–सरन।